एक सन्त का हृदय

ज्ञानेश्वर महाराज का जीवन व उनकी सिखावनियाँ

सम्पूर्ण मानव-इतिहास में, आध्यात्मिक गुरुजन हमें हमारी अपनी अन्तरस्थ दिव्यता के प्रकाश के प्रति जाग्रत करने के लिए इस संसार में अवतरित हुए हैं। अपनी सिखावनियों व स्वयं अपने जीवन के उदाहरण द्वारा, वे हमें यह बोध प्रदान करते हैं जिससे हम समस्त सृष्टि में ईश्वर की उपस्थिति को पहचान सकें, साथ ही वे हमारा मार्गदर्शन भी करते हैं ताकि हम यह जान सकें कि हम भी प्रकाश के वाहक बन सकते हैं, तथा जिस तरह से हम इस संसार में अपना जीवन जीते हैं उसके माध्यम से हम इस प्रकाश को इस संसार में फैलाने में योगदान कर सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज, जो तेरहवीं शताब्दी में भारत के महाराष्ट्र राज्य में रहा करते थे, वे ऐसी ही एक महान विभूति थे।

इन महान आत्मा के विषय में गुरुमाई चिद्विलासानन्द कहती हैं :

> ज्ञानेश्वर महाराज आनन्द और प्रेरणा से प्रस्फुटित देदीप्यमान सूर्य के समान हैं जो केवल और भी कई सूर्यों की रचना करना चाहते हैं।[१]

ये शब्द श्रीगुरुमाई के आशीर्वचनों में से हैं, जो उन्होंने स्वामी कृपानन्द द्वारा अनुवादित, ज्ञानेश्वर महाराज की 'श्रीभगवद्गीता' पर की गई अनुपम टीका के आरम्भ में कहे हैं।

'ज्ञानेश्वर' नाम का अर्थ है 'ज्ञान के ईश्वर।' यद्यपि उनका जीवनकाल दो दशकों से बस थोड़ा ही अधिक रहा, तथापि ज्ञानेश्वर महाराज ने उस ग्रन्थ की रचना की जिसे भारत की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक टीकाओं में से एक माना जाता है—'ज्ञानेश्वरी'। साथ ही, उन्होंने दो अन्य महत्त्वपूर्ण कृतियों की भी रचना की—'अमृतानुभव' [आध्यात्मिक पथ की दिव्य रसानुभूतियों के विषय पर पद] व 'चांगदेव पासष्टी' [ऐसा माना जाता है कि इन ६५ पदों में अद्वैत वेदान्त दर्शन का सार प्रतिपादित किया गया है]। इन गौरवशाली रचनाओं द्वारा, उन्होंने मराठी भाषा को एक सम्माननीय साहित्यिक व दार्शनिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। ज्ञानेश्वर महाराज के समय से पूर्व, महाराष्ट्र के विद्वानों व पुरोहितों द्वारा संस्कृत भाषा का ही उपयोग किया जाता था।

महाराष्ट्र में भक्तिमार्ग की धारा के प्रवर्तन में ज्ञानेश्वर महाराज की प्रमुख भूमिका रही जो कि सम्पूर्ण राज्य में फैल गई। एक अन्य युवा सन्त-कवि, नामदेव महाराज के साथ मिलकर 'वारकरी' सम्प्रदाय की स्थापना करने में उनका अमूल्य योगदान रहा; 'वारकरी' सम्प्रदाय मध्य भारत के भक्ति

आन्दोलन का एक भाग था। वारकरी सम्प्रदाय के अनुयायी जो कि भगवान विष्णु के उपासक हैं, इस बोध के साथ जीते हैं कि ईश्वर सर्वत्र हैं और हर व्यक्ति सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी है, चाहे उसकी जाति या पद कुछ भी हो। आज भी, हज़ारों वारकरी, ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा स्थापित परम्परा का पालन करते हैं—हर वर्ष वे पण्ढरपुर नगर की तीर्थयात्राएँ करते हैं जहाँ पर वे 'भगवान विठ्ठल' की जाग्रत मूर्ति के रूप में भगवान विष्णु की पूजा-अर्चना करते हैं।

इसके अतिरिक्त ज्ञानेश्वर महाराज एक कवि भी थे। ज्ञानेश्वर महाराज ने स्वयं एक लयात्मक छन्द, 'ओवी' की रचना की और इसी छन्द में सैकड़ों अभंग, यानी मराठी भाषा में भक्तिगीत लिखे। उल्लास से भरपूर लयबद्ध ताल में रचित, मन्त्रमुग्ध कर देने वाली संगीत-रचनाओं द्वारा और सर्वसामान्य लोगों की समझ में आए, ऐसी भाषा में लिखकर ज्ञानेश्वर महाराज नें अपने अभंगों द्वारा सर्वोच्च आध्यात्मिक ज्ञान को अभिव्यक्त किया। ये ऐसे भक्तिगीत थे जिन्हें महाराष्ट्र के अशिक्षित लोग भी याद रखकर, अपना काम करते समय या सड़क पर चलते-चलते भी गुनगुना सकते थे।

ज्ञानेश्वर महाराज के अभंग व उनके द्वारा लिखी सिखावनियाँ सौन्दर्य तथा प्रज्ञान से इतनी ओतप्रोत हैं कि यह एकनाथ महाराज और तुकाराम महाराज जैसे अन्य महान आध्यात्मिक गुरुओं के लिए भी प्रेरणा-स्रोत रहा। आज के समय में, गुरुमाई जी और बाबा मुक्तानन्द ने बहुधा ज्ञानेश्वर महाराज के अभंग गाए हैं और अपने प्रवचनों व लेखों में उनके शब्दों को उद्धृत किया है।

ज्ञानेश्वर महाराज का जीवनकाल अल्प रहा; उनकी जीवन-गाथा ऐसे अद्भुत कार्यों से भरपूर है जिनमें उनकी करुणा झलकती है। यह एक महात्मा के स्वभाव को दर्शाती है और इसने अनेक पीढ़ियों के जिज्ञासुओं को प्रेरित किया है।

ज्ञानेश्वर महाराज का आरम्भिक जीवन

ज्ञानेश्वर महाराज के पिता का नाम था विठ्ठलपन्त जो एक निष्ठावान, उत्साही युवा ब्राह्मण थे। वे आलन्दी गाँव के निकट आपेगाँव में रहते थे। यद्यपि उनमें संन्यास दीक्षा लेकर एक स्वामी बनने की तीव्र इच्छा थी, तथापि उन्हें यह परामर्श दिया गया कि पहले वे अपनी घर-गृहस्थी बसाएँ। अतः उन्होंने एक गुणवन्ती युवती, रखुमाबाई से विवाह किया जो आलन्दी गाँव के एक कुलकर्णी की पुत्री थीं। कई वर्ष बीत गए परन्तु रखुमाबाई की कोई सन्तान नहीं हुई। अन्ततः विठ्ठलपन्त जी को यह लगने लगा कि उन्होंने अपने हृदय की असली, गहन ललक को अनसुना किया है। अतः अपनी पत्नी की अनुमति प्राप्त कर, वे उन्हें छोड़कर चले गए व संन्यासी बन गए।

वे उत्तर भारत में बनारस पहुँच गए जहाँ उन्होंने गुरु रामानन्द से संन्यास दीक्षा ली। अनेक वर्षों तक अपने गुरु के आश्रम में रहने के बाद भी विठ्ठलपन्त ने अपने गुरु को कभी यह नहीं बताया कि वे अपनी पत्नी का त्याग करके आए हैं। जब गुरु रामानन्द को इस सच्चाई का पता चला तो उन्होंने यह आदेश दिया कि विठ्ठलपन्त गेरुए वस्त्र त्यागकर अपनी पत्नी के पास लौट जाएँ और अपनी गृहस्थी बसा लें।

इसलिए विठ्ठलपन्त, रखुमाबाई के पास लौट आए और रखुमाबाई ने भी अपने पति का खुशी-खुशी स्वागत किया। इस बार, उन्हें सन्तान-सुख प्राप्त हुआ। सबसे पहले एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम था, निवृत्ति। उसके तीन वर्ष पश्चात्, दूसरे पुत्र, ज्ञानेश्वर का जन्म हुआ। तत्पश्चात् एक और पुत्र, सोपान और अन्ततः एक पुत्री, मुक्ताबाई ने उनके घर जन्म लिया। चार सुन्दर, प्यारी-प्यारी सन्तानें।

परन्तु उस समय का रूढिवादी ब्राह्मण-समाज, इस बात से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ कि जो व्यक्ति संन्यासी हो गया हो, वह पुनः गृहस्थ जीवन में लौट आया है। उन्होंने यह घोषित कर दिया विठ्ठलपन्त की सन्तानें अवैध हैं और उनका परिवार विधिसम्मत नहीं है। आलन्दी का ब्राह्मण-समाज इन छः सदस्यों के साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करने लगा। जब निवृत्ति के उपनयन संस्कार का समय आया, जिसे हिन्दू ब्राह्मण बालकों के धार्मिक जीवन का आरम्भ माना जाता है तो वहाँ के प्रमुख पुरोहित ने निवृत्ति के बारे में कहा, "यह ब्राह्मण नहीं है। यह एक संन्यासी का पुत्र है।"

अतः, विठ्ठलपन्त के परिवार को जातिच्युत माना जाने लगा और अब वे उस प्रतिष्ठित ब्राह्मण जाति के सदस्य नहीं रह गए। इन बच्चों को अनेक अभाव सहने पड़े, कभी-कभी तो उन्हें भोजन भी नहीं मिलता। तथापि, वे ज्ञान-सम्पत्ति से समृद्ध थे। उनके पिता ने उन्हें संस्कृत भाषा का ज्ञान दिया, साथ ही उन्हें वे पावन मन्त्र व शास्त्र भी सिखाए जिनका अध्ययन उन्होंने स्वयं किया था।

और जैसा कि कालान्तर में सिद्ध हुआ कि विठ्ठलपन्त की हर सन्तान का यह प्रारब्ध ही था कि वे इस संसार में जन्म लेकर आत्मज्ञानी बनें।

श्रीभगवद्गीता पर अपनी टीका में ज्ञानेश्वर महाराज लिखते हैं कि कि ऐसी सन्तानें किस प्रकार जन्म लेती हैं। ज्ञानेश्वरी के छठे अध्याय में, भगवान श्रीकृष्ण योद्धा अर्जुन को यह समझाते हैं कि एक योगी जो आत्मज्ञान पाने का प्रयत्न कर रहा हो, यदि वह अपने जीवनकाल में ऐसा करने में असफल रहता है, तो उसका किया हुआ प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता। कालान्तर में, वह एक धार्मिक परिवार में पुनर्जन्म लेकर उस ज्ञान को दोबारा प्राप्त कर लेता है जो उसने अपने पूर्वजन्म में अर्जित किया था। भगवान श्रीकृष्ण आगे कहते हैं :

> देखने में उसकी देहाकृति भले ही छोटी लगे, फिर भी उसमें आत्मज्ञान का अरुणोदय होता हुआ दिखता है, वैसे ही जैसे सूर्य के उदित होने से पूर्व प्रकाश प्रकट होता है।[२]

इसी से यह स्पष्ट होता है कि क्यों स्वयं ज्ञानेश्वर महाराज और उनके भाइयों व बहन में इतनी अल्पायु में ही प्रकाश व ज्ञान का प्राकट्य हुआ। उनमें से हरेक अपने पूर्वजन्म में एक साधक था और अपनी पूर्वप्राप्ति को लेकर ही उसने इस संसार में जन्म लिया था।

जब ज्ञानेश्वर महाराज के बड़े भाई, निवृत्ति अपनी किशोरावस्था में थे तब उन्हें गहिनीनाथ नामक गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई और उन्हें निवृत्तिनाथ नाम दिया गया। नाथ-सम्प्रदाय के अनुसार उनकी गुरु-परम्परा आदिशिव से आरम्भ होती है। उन्हें पावन अन्तर-शक्ति, कुण्डलिनी का ज्ञान था और वे यौगिक अभ्यासों द्वारा सुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत करते थे।

अत्यन्त अल्प समय में ही निवृत्तिनाथ ने अपने पूर्वजन्मों का संचित ज्ञान पुनः प्राप्त कर लिया और पूर्ण आत्मज्ञानी बने। तत्पश्चात् स्वयं उन्होंने यह सामर्थ्य पा ली जिससे वे ज्ञानेश्वर महाराज की अन्तर-शक्ति को जाग्रत कर सके; साथ-ही, सोपान व मुक्ताबाई की अन्तर-शक्ति को भी जाग्रत कर वे अपने भाइयों व बहन के गुरु बन गए।

परन्तु, इस कालावधि में उनके माता-पिता का देहान्त हो गया और इन भाइयों व बहन के कष्ट और भी बढ़ गए। उन्होंने अपने ब्राह्मण-समाज से सहायता माँगी तो उन्हें यह सलाह दी गई कि वे पहले पैठण नगर की धर्मपीठ के पास जाकर उनसे यह शुद्धिपत्र ले आएँ कि वे अपने पिता के पाप से मुक्त हो गए हैं। आलन्दी से पैठण सैकड़ों मील दूर है; इन बच्चों ने पैदल ही इतनी दूर यात्रा की और अपने आध्यात्मिक ज्ञान से पैठण के ब्राह्मणवृन्द को इस प्रकार प्रभावित किया कि उन्हें शुद्धिपत्र दे दिया गया।

वापस अपने निवासस्थान लौटते समय, वे नेवासा गाँव पहुँचे और उन्होंने कुछ समय वहीं रहने का निर्णय लिया। यहीं पर निवृत्तिनाथ ने ज्ञानेश्वर महाराज को आदेश दिया कि वे श्रीभगवद्गीता के श्लोकों का मराठी भाषा में अनुवाद करें और उस पर ऐसी टीका लिखें जिसे वे लोग भी समझ सकें जिन्हें शास्त्रों का ज्ञान नहीं है।

यह सन् १२९० की बात है; ज्ञानेश्वर महाराज तब पन्द्रह वर्ष के थे। उन्होंने निस्संकोच इस महान कार्य को आरम्भ किया; वे श्लोकों को लयबद्ध रूप में गाते गए और एक सज्जन जिनका नाम था सच्चिदानन्द बाबा, वे उन श्लोकों को लिखते गए।

ग़ौर करने वाली बात यह है कि ज्ञानेश्वर महाराज ने न केवल इस चुनौती को स्वीकार किया, बल्कि उन्होंने इसे जिस प्रकार निभाया वह भी उल्लेखनीय है।

ज्ञानेश्वर महाराज की लेखन-शैली

ज्ञानेश्वर महाराज ने बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी मराठी भाषी लोगों को वे पवित्र सिखावनियाँ उपलब्ध कराईं जिन्हें वे लोग अब तक अपनी भाषा में नहीं सुन सके थे—और ज्ञानेश्वर महाराज ने यह सब उमंगभरे जोश के साथ किया। उन्होंने लिखा है :

> मेरी भाषा मराठी है, तथापि मैं इस कृति की रचना ऐसे लालित्यपूर्ण शब्दों व शैली में करूँगा कि यह सहज ही अमृत से आगे निकल जाएगी।[३]

और इन युवा सन्त-कवि ने ऐसा कैसे कर लिया? वे स्वयं ही इसे समझाते हैं :

> सद्‌गुरु की कृपा हो तो हम क्या नहीं कर सकते? ज्ञानदेव कहते हैं, मेरे पास तो यह प्रचुर रूप में है। उसी कृपा की सामर्थ्य से मैं बोलूँगा। शब्दों द्वारा मैं अरूप को रूप प्रदान करूँगा और जो अतीन्द्रिय है यानी इन्द्रियबोध की सामर्थ्य के परे है, उसका भोग इन्द्रियों को कराऊँगा।[४]

निस्सन्देह, मराठी भाषा पर ज्ञानेश्वर महाराज का ऐसा प्रभुत्व था कि इसका वर्णन करते हुए विद्वज्जनों के लिए अपने उत्साह को रोक पाना असम्भव-सा ही होता है। उदाहरण के लिए, एक विद्वान श्री वा. ब. पटवर्धन, ज्ञानेश्वर महाराज द्वारा रचित 'ज्ञानेश्वरी' की श्लोक-रचना की शैली का वर्णन करते हुए ऐसे मन्त्रमुग्ध हो गए कि इसकी सराहना करने हेतु वे स्वयं वाक्पटुता के साथ लिखने के लिए प्रेरित हुए।

> साहित्यिक दृष्टि से, ज्ञानेश्वरी इतनी उत्कृष्ट, इतनी सौन्दर्ययुक्त है, इसमें प्रयुक्त रूपक व तुलनाएँ, उपमाएँ व सादृश्य प्रस्तुत करने वाली छवियाँ इतनी काव्यात्मक हैं, इसकी शैली इतनी सुगम व सुस्पष्ट है, इसमें कल्पनाएँ इतनी प्रचुर हैं, इसके प्रतीक इतने आनन्दप्रद हैं, इसकी सुकल्पना की उड़ानें इतनी ऊँची हैं, इसकी वाणी इतनी दिव्य है, इसके संगीतात्मक शब्द इतने सुमधुर हैं, इसके रूपक इतनी रचनात्मकता से भावों को अत्यन्त व्यापक रूप में अभिव्यक्त करते हैं, इसका रस इतना निर्मल है . . . कि पाठक बस मन्त्रमुग्ध-सा रह जाता है; वह इसकी प्रवाहमान तरंगों पर आनन्दमय मस्ती में तैरता रहता है, इसकी लय व

मधुर स्वरों के आरोह-अवरोहों में खो जाता है, और अन्त में रह जाती है, बस कृतज्ञता और विचारशून्यता।[५]

फिर भी, मन को शान्त करने के साथ-साथ, ज्ञानेश्वर महाराज पाठक को उसी परमोच्च मुक्ति व आनन्द की अवस्था का रसास्वादन करा सकते थे जिस अवस्था से वे स्वयं उन वचनों को अभिव्यक्त कर रहे हैं; और ऐसा ही उनके श्रोतागण के साथ उनके जीवनकाल में भी होता था। देखें कि अपनी महान व्याख्या के १३वें अध्याय में ज्ञानेश्वर महाराज इस अवस्था का आवाहन किस प्रकार करते हैं :

कृष्णार्जुन के संवाद की गाथा को अब मैं मराठी भाषा में ओवीबद्ध कर कहता हूँ।

इस कथा को मैं ऐसे शान्तिभाव से सुनाऊँगा, जो कि प्रेमभाव से कहीं अधिक सुन्दर है।

मैं इसे बड़ी ही सुन्दर मराठी भाषा में कहूँगा, और यह साहित्य के लिए एक अलंकार के समान होगी क्योंकि यह अमृत से भी अधिक रसमय है।

अपनी शीतलता में यह चन्द्रमा की बराबरी करेगी और इसमें निहित भावना का सौन्दर्य दिव्य नाद से भी बढ़कर होगा।

इसके श्रवण से एक दुष्टात्मा के मन में भी शुचिता की धाराएँ फूट पड़ेंगी, और एक सात्त्विक व्यक्ति को गहन समाधिसुख की अनुभूति होगी।

इसके वाग्विलास की धारा उमड़कर समस्त विश्व को गीता के अर्थ से भर देगी और इससे सम्पूर्ण जगत के ऊपर आनन्द के एक अत्यन्त विस्तृत वितान [विस्तृत छत्र] का निर्माण हो जाएगा।

इससे विवेक का किसी भी प्रकार का अभाव दूर हो जाएगा, कान तथा मन के जीवन में पुनः नयापन भर जाएगा, और जिसे भी ब्रह्मविद्या की कामना हो, वह ब्रह्मविद्या की खान को पा लेगा।

नेत्रों को परतत्त्व के दर्शन होंगे, सुखोत्सव का उदय होगा, और यह विश्व महाबोध के यानी ब्रह्मज्ञान के प्राचुर्य में प्रवेश करेगा।

मेरे परमपावन श्रीगुरु निवृत्तिनाथ मेरे साथ हैं, इसलिए यह सब घटित होगा, और मैं इसे भली प्रकार कहूँगा।[६]

कल्पना करें कि जब महाराष्ट्र के लोगों ने सुना होगा कि उनकी अपनी भाषा इतनी सरलता, उत्साह, कौशल व स्वतन्त्रता के साथ बोली जा रही है तब उन्हें कैसा महसूस हुआ होगा! और पावन सिखावनियों को इस तरह से सीखने का उनका अनुभव कैसा रहा होगा!

ज्ञानेश्वरी की सिखावनियाँ

भाषा के साथ ही, ज्ञानेश्वर महाराज ने श्रीभगवद्गीता के प्रज्ञान को जनसाधारण के लिए सुलभ कराने की अपने श्रीगुरु की आज्ञा का श्रद्धापूर्वक पालन किया; उन्होंने इन पावन सिखावनियों को इस तरह प्रदान किया कि हम उन्हें अपने दैनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में समझ सकें। उदाहरण के लिए, देखिए कि ज्ञानेश्वर महाराज हमें किस प्रकार ऐसे व्यक्ति को पहचानना सिखाते हैं जो वास्तव में सच्चे ज्ञान का मूर्तरूप है :

> जब यह ज्ञान शरीर में प्रकट होता है, तो नेत्र इसे देख सकते हैं, क्योंकि यह ज्ञान इन्द्रियों के क्रियाकलाप द्वारा स्वयं को प्रकट करता है।
>
> इस ज्ञान की उपस्थिति का बोध वैसे ही होता है, जैसे वृक्षों पर छाई ताज़गी से वसन्त के आगमन का पता चलता है।
>
> जब वृक्षों की जड़ों को जल से सींचा जाता है, तो उसका प्रभाव वृक्ष की शाखाओं पर फूटने वाले नवपल्लवों पर दिखता है।
>
> पौधों के कोमल अंकुरों से भूमि के मार्दव यानी मृदुता का प्रमाण मिलता है। किसी व्यक्ति का श्रेष्ठ आचरण उसकी कुलीनता का प्रमाण है।
>
> किसी व्यक्ति के आतिथ्य में उसका स्नेहपूर्ण स्वभाव झलकता है; और जब किसी व्यक्ति के दर्शनमात्र से सुकून का अनुभव होता है तो हम जान जाते हैं कि वह पुण्यपुरुष है।[७]

ग़ौर करें कि ज्ञानेश्वर महाराज किस प्रकार एक समझदार व विवेकशील व्यक्ति का परिचय देते हैं; वे बताते हैं कि ऐसे व्यक्ति का रहन-सहन व दूसरों के प्रति उसका व्यवहार कैसा होता है और उसे देखकर हम कैसा महसूस करते हैं। यहाँ विद्वत्तापूर्ण ज्ञान का कोई उल्लेख नहीं है। ज्ञानेश्वर महाराज तो ऐसे व्यक्ति का वर्णन कर रहे हैं जिसे बाबा मुक्तानन्द, "सच्चा मानव"[८] कहा करते थे।

अब उस तरीक़े को देखें जिससे ज्ञानेश्वर महाराज अपने पाठकों व श्रोताओं के मन को हल्का कर रहे हैं और उन्हें मृत्यु विषयक वह प्रज्ञान प्रदान कर रहे जो भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था :

> जिन्हें मेरे साथ एकात्म की अनुभूति हुई है और जिन्होंने अपने हृदय में मुझे दृढ़ता से पकड़कर रखा है, वे मेरी उपासना करते हैं और मेरे साथ एकाकार हो जाते हैं।
>
> अपने देहावसान के क्षण, यदि ऐसे लोगों को मेरा स्मरण करना पड़े और तब मुझे उनके पास जाना पड़े, तो मेरे प्रति उनकी भक्ति का मूल्य ही क्या होगा?
>
> यदि कोई निर्धन व्यक्ति अपने संकट-काल में सहायता के लिए मुझे दीनतापूर्वक पुकारे, तो क्या मैं उसके कठिन समय में, उसे उबारने के लिए दौड़कर नहीं जाऊँगा?
>
> मेरे भक्तों की दशा भी यदि ऐसी ही हो तो किसमें भक्ति के प्रति किञ्चित भी ललक होगी? अतः तुम्हें यह सन्देह कदापि नहीं होना चाहिए।
>
> हे अर्जुन, यह विचार मुझसे सहा ही नहीं जाता कि जब भी वे मदद के लिए मेरी ओर उन्मुख हों, केवल तभी मुझे उनके पास जाने की याद आए।
>
> अपने भक्तों के इस ऋण को ध्यान में रखकर, मैं उनकी मृत्यु के समय, उनका दास बनकर उस ऋण को चुकाता हूँ।
>
> मेरे परमप्रिय भक्तों को देह के क्षीण होने की उस वायु का एहसास भी न हो, इसलिए मैं उन्हें आत्मबोध के पिंजरे में सुरक्षित रखता हूँ।
>
> इतना ही नहीं, मैं इस पिंजरे पर अपनी स्मरणरूपी शीतल छाया का आवरण डाल देता हूँ, और इस प्रकार मैं उन्हें मन की दृढ़ता प्रदान करता हूँ।
>
> इसी कारण, देहान्त होने के संकट का प्रभाव मेरे लोगों पर नहीं पड़ता, और मैं अत्यन्त सुख से उन्हें अपने पास ले आता हूँ।[९]

ज़रा सोचें कि मृत्युशैया पर लेटे व्यक्ति को इस करुणामय आश्वासन को याद करके कितनी बड़ी राहत मिलेगी। इसकी भी कल्पना करें कि ज्ञानेश्वर महाराज के ये शब्द उन लोगों को कितनी राहत पहुँचाएँगे जो उस व्यक्ति से प्रेम करते हैं। ये शब्द एक ऐसे महात्मा के हृदय से निकले हैं जो अभय का वरदान देते हुए इस संसार में विचरण करते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज की समाधि

इक्कीस वर्ष की आयु में, सन्त नामदेव के साथ पण्ढरपुर की यात्रा कर वहाँ एक धार्मिक अनुष्ठान करने के पश्चात्, ज्ञानेश्वर महाराज ने अपने मित्र को बताया कि वे जिस कार्य के लिए इस संसार में

आए थे वह पूरा हो गया है और अब वे इस संसार से विदा लेना चाहते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने कहा कि उन्होंने समाधि की शाश्वत अवस्था में प्रवेश करने, यानी जीवन्त [संजीवन] समाधि द्वारा परमचिति में लीन होने के लिए निवृत्तिनाथ जी की अनुमति ले ली है।

ज्ञानेश्वर महाराज और उनके भाइयों व बहन के साथ, सन्त नामदेव उनके मूल निवासस्थान, आलन्दी लौटे। वहाँ आकर, पूरी रात भगवन्नाम का संकीर्तन करने के बाद, ज्ञानेश्वर महाराज ने उस समाधि-स्थल में प्रवेश किया जो उनके लिए बनाया गया था। वे ध्यान में बैठे और समाधि की स्थिति में लीन हो गए।

आलन्दी में उनका यह समाधि-स्थल, भारत के महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थानों में से एक है। गुरुमाई जी व बाबा जी, दोनों ने अकसर आलन्दी की यात्रा की है और उनके साथ कई सिद्धयोग विद्यार्थी भी वहाँ गए हैं। अनेकानेक लोगों का विश्वास है कि ज्ञानेश्वर महाराज ध्यानावस्था में आज भी वहाँ विराजमान हैं। अनेक दर्शनार्थियों ने इस बात की पुष्टि की है कि उन्हें वहाँ ज्ञानेश्वर महाराज की सजीव उपस्थिति की अनुभूति होती है।

एक बात तो निश्चित है। इस संसार के निवासियों पर ज्ञानेश्वर महाराज अपने आशीर्वादों की वर्षा करते रहेंगे। उनके करुण शब्द व आत्मानुभव से परिपूर्ण सिखावनियाँ सदैव उन सभी का मार्गदर्शन व उत्थान करती रहेंगी जो उन सिखावनियों को अंगीकार कर उनका पालन करेंगे।

एक महात्मा का हृदय सदैव इस संसार के व इसमें रहने वाले प्राणियों के सुख की कामना करता है। 'ज्ञानेश्वरी' के समापन पर, ज्ञानेश्वर महाराज अपनी इस प्रार्थना, 'पसायदान' के साथ इस संसार को आशीर्वाद देते हैं। वे कहते हैं :

> विश्वात्मा इस वाग्यज्ञ [शब्द रूपी यज्ञ] से सन्तुष्ट होकर मुझे अपनी कृपा प्रदान करें।
>
> पापीजन अब पापकर्म न करें, सत्कर्म करने में उनकी रति [इच्छा] बढ़े, और समस्त प्राणी परस्पर मैत्रीभाव से, सामंजस्य से रहें।
>
> पापों का अन्धकार नष्ट हो, इस विश्व को धर्म के सूर्योदय के दर्शन हों, और समस्त प्राणियों की जो-जो कामनाएँ हों, वे सब पूर्ण हों।
>
> सभी जन ईश्वरनिष्ठ सन्तों की संगति में रहें, ये सन्तजन सभी पर अपने आशीर्वादों की वर्षा करेंगे।

ये सन्त कल्पवृक्षों से भरे, चलते-फिरते उपवन हैं, और ये चिन्तामणि के चैतन्य ग्राम हैं। उनके वचन अमृत के सागर के समान हैं।

ये सन्तजन कलंकहीन चन्द्रमा हैं, तापहीन सूर्य हैं। ये सन्तजन सदैव सभी लोगों के स्वजन बने रहें।

सभी लोकों के सभी प्राणी, सर्वसुख से परिपूर्ण हों और वे आदिपुरुष को, ईश्वर को अखण्डरूप से भजते रहें।

यह ज्ञानेश्वरी ग्रन्थ जिन लोगों के लिए उनके प्राण ही है, उन्हें इस लोक में तथा परलोक में विजय [सफलता] का वरदान प्राप्त हो।

तब श्रीविश्वेश्वर, सद्‌गुरु निवृत्तिनाथ ने कहा—"यह प्रसाद तुम्हें दिया जाता है।" इससे ज्ञानदेव को अत्यन्त सुखानुभूति हुई।[१०]

सात शताब्दियों से भी अधिक पूर्व लिखे अपने मर्मस्पर्शी वचनों और सिखावनियों के भण्डार से, ज्ञानेश्वर महाराज ने विश्वभर के आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को प्रेरित व प्रोत्साहित किया है, उनका उत्थान किया है और करते रहेंगे।

© २०२० एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा लिखित "Blessing" से; स्वामी कृपानन्द द्वारा सम्पादित, *Jnaneshwar's Gita: A Rendering of the Jnaneshwari* [साउथ फ़ॉल्सबर्ग, न्यूयॉर्क : एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन, १९९९] से उद्धृत।

[२] ज्ञानेश्वरी ६:४५०; *Jnaneshwar's Gita,* पृ ८५।

[३] ज्ञानेश्वरी ६:१४; *Jnaneshwar's Gita,* पृ ६६।

[४] ज्ञानेश्वरी ६:३५-३६; *Jnaneshwar's Gita,* पृ ६८।

[५] आर. डी. रानडे, *Mysticism in Maharashtra: The Poet-Saints of Maharashtra* [ऑल्बनी, न्यूयॉर्क : SUNY प्रेस, १९८३] पृ. ३६-३७।

[६] ज्ञानेश्वरी १३:११४९-५७; *Jnaneshwar's Gita,* पृ २१९-२०।

[७] ज्ञानेश्वरी १३:१७६-८१; *Jnaneshwar's Gita,* पृ १९०।

[८] बाबा मुक्तानन्द एक गुणवान व्यक्ति का वर्णन करने के लिए अकसर इन शब्दों का प्रयोग करते। इस विषय में एक सन्दर्भ यह है : स्वामी मुक्तानन्द, *मुक्तेश्वरी,* [चित्शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१४] सूक्ति २६२, पृ ७४।

[९] ज्ञानेश्वरी ८:१२४-३२; *Jnaneshwar's Gita,* पृ १०३।

[१०] ज्ञानेश्वरी १८:१७७२-१७८०।